शादी के बहाने

मंजूर एहतेशाम

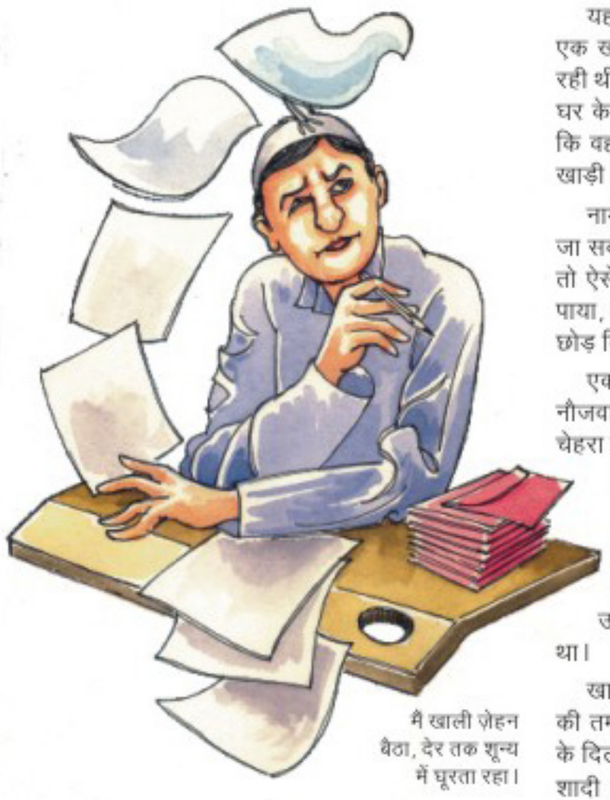

मैं खाली ज़ेहन
बैठा, देर तक शून्य
में घूरता रहा।

सब कुछ तय हो गया था – उबटने की रस्म एक शादी हॉल से, मेंहदी दूसरी जगह से, निकाह शहर की ताजुल मसज़िद से। बारातियों को होटल इम्पीरियल सेब्र के करीब मिलना था और दूल्हा के साथ होटल तक जाना था। लड़की वालों ने वहीं इन्तज़ाम किया था। वहीं से दुल्हन को रुख्सत किया जाना था। एक दिन बाद, उसी जगह रात को हमारी तरफ से वलीमे की दावत थी।

जगहें सब अच्छी थीं। खास ध्यान गाड़ियों की पार्किंग की जगह का रखा गया था। खाने, डेकोरेशन, बिजली की सजावट का ज़िम्मा, इन कामों को करने वाले भरोसेमन्द लोगों को दिया जाना था। खाने का मीनू तय होना था। और काज़ी साहब के दफ्तर जाकर निकाह की कागज़ी तकमील की जानी थी।

यह सब भागादौड़ी के काम थे, जिनमें मैं कुछ मदद नहीं कर सकता था। सो मुझे, मेरे लायक, शादी के कार्ड का ज़िम्मा सौंप दिया गया था। मेहमानों की लिस्ट चैक करना, लिफाफे लिखवाना, और उनको सही पते तक पहुँचाना। मुझे घर की वह पुरानी लिस्ट थमा दी गई थी, जिसमें पिछले पचास सालों में, जो शादियाँ हुई थीं उनमें बुलाए जाने वाले नाम-पते थे।

यह छोटे भाई के बेटे की शादी की बात है, जो शहर के ही एक खानदान में हो रही थी। पिछले महीनों शादी की गर्मागर्मी रही थी। इसकी शुरुआत मँगनी के फौरन बाद ही हो गई थी। यह घर के बड़ों के ज़रिए तय की गई शादी थी, और हमें यकीन था कि वह लोग भी इसमें शिरकत करने आएँगे, जो पाकिस्तान या खाड़ी के देशों में बस गए थे।

नामों की लिस्ट एक जिल्द में बन्द थी। उसमें नए नाम जोड़े जा सकने के लिए अभी भी सादा पन्ने मौजूद थे। इसमें कुछ नाम तो ऐसे भी थे जिन्हें कोशिश करने के बाद भी मैं याद नहीं कर पाया, और कुछ की याद ने दिल को अजीब तरह से उदास करके छोड़ दिया।

एकाएक ख्याल आया कि मेरे बचपन से लेकर लड़कपन और नौजवानी तक खानदान की शादियों के साथ, अगर मुझे कोई एक चेहरा जुड़ा हुआ याद था, तो वह नाइन बुआ का था।

उनका नाम इस मोटी लिस्ट में शामिल नहीं था।

याद आया, उनका सिर्फ एक हाथ था। लम्बा कद, इकहरी काठी। सिर हमेशा पल्लू से ढँका रहता। वे हमारे खानदान की नाइन थीं और कोई भी शादी का रिश्ता उनकी मौजूदगी और हिस्सेदारी के बिना तय नहीं हो सकता था।

खानदान के तमाम जवान होते, या हो चुके, लड़के-लड़कियों की तमाम खूबियाँ और खराबियाँ उन्हें याद होतीं। लड़की वालों के दिल का हाल मालूम करके, लड़के वालों को बताना और फिर शादी के लिखित प्रस्ताव "पैगाम" को, लड़कीवालों के घर लेकर जाना। लड़कीवालों की बातें लड़केवालों तक, और उनकी बातें इन तक, इस तरह पहुँचाना कि दोनों में किसी तरह की गलतफहमी न पैदा हो! ये सब काम नाइन बुआ के होते। ये कोई आसान काम नहीं थे। एक शादी, खैरो खबी (खैरियत) के साथ करा पाना, नाइन बुआ के लिए, एक आग का दरिया पार करने से किसी तरह कम न होता होगा। अगर सब कुछ ठीक-ठाक हो गया, तो उसका क्रेडिट घरवाले खुद ले लेते थे, और कुछ ऊँच-नीच हुई, तो उसका ठीकरा फूटता था, नाइन बुआ के सिर।

रिश्ता पुख्ता हो जाने, या मँगनी की रस्म अदा हो जाने के बाद भी नाइन बुआ के ज़िम्मे कई काम होते। उबटना, मेंहदी, निकाह,

बारात, वलीमा, और दुल्हनवालों की तरफ से दी जाने वाली जुमे की दावतों (किसी ज़माने में छुट्टी के दिन यानी जुम्मे के दिन होने के कारण शायद इसे यह नाम मिला) का इजून (न्यौता) भी नाइन बुआ ही, खानदान के घर-घर लेकर जाती थीं। उस ज़माने में खास-खास लोग ही कार्ड छपवाते थे या छपवा पाते थे।

उर्दू में एक कलमी लिस्ट तैयार की जाती थी। उसके साथ, दावत की तफसील और शिरकत की दर्खवास्त होती थी। इसे लेकर, नाइन बुआ घर-घर घूमती थीं और

एक खास छेड़खानी का रिश्ता बना लिया था उन्होंने मुझसे। बड़ी ख्वाहिश थी उनकी कि मेरे लिए लड़की ढूँढें।

शादी में सबसे महत्वपूर्ण, निकाह की रस्म होती है। इसी में सबसे ज़्यादा लोग शामिल होते हैं। निकाह वास्तव में लड़के और लड़की के एक-साथ रहने का औपचारिक इकरारनामा होता है। यह रस्म पास की बड़ी मस्ज़िद में लोगों के बीच, निकाह पढ़ाने वाले के सामने होती है। इसमें दुल्हन को दूल्हे द्वारा दिया जाने वाला मेहर (पैसे या कोई कीमती चीज़) आदि, ऊँची आवाज़ में पढ़कर सुनाया जाता है। और उन पर दोनों पक्षों की स्वीकृति ली जाती है।

स्वीकृति लेने के बाद एक धार्मिक भाषण - खुत्बा -निकाह पढ़ाने वाले द्वारा अरबी में दिया जाता है। और सुखमय जीवन के लिए सब हाथ उठाकर दुआ करते हैं। इसी मौके पर छुआरे लुटाए जाते हैं। निकाह में शामिल लोगों को कुछ मीठा, तबर्रुक के स्वरूप दिया जाता है, जिसे निकाह का हिस्सा कहा जाता है।

लोगों की स्वीकृति (साद) उनके हाथों से दर्ज कर के लाती थीं। फिर एक ज़माना आया जब कार्ड छपवाए जाने लगे थे। अब ये कार्डों की थप्पी थामे सारे शहर और गली-मुहल्लों में उन्हें बाँटतीं। बाद में, जोड़े लड़का-लड़की की मर्ज़ी से या खानदान के बुजुर्गों द्वारा तय होने लगे थे। लेकिन तब भी, नाइन बुआ ही, एक वकील की तरह, लड़के का पर्चा लेकर, लड़की के घर जाती थीं।

एक चूक मुझ से हुई कि बुजुर्गों से यह पूछ न सका कि उनकी सारी मशक्कत के एवज़ में नाइन बुआ को जिसे वे खुद "इनाम" कहती थीं, दिया क्या जाता था?

नाइन बुआ अपनी तारीफ या आलोचना से हमेशा अनछुई नज़र आतीं। उन्हें सिर्फ अपने काम से काम रहता था। कभी-कभी ऐसा भी होता कि उन्हें दो या तीन शादियों की ज़िम्मेदारी एक ही समय में निभानी पड़ती। और वे उस ज़माने के छोटे ही सही, मगर पूरे शहर में एक हाथ से सिर पे साड़ी का पल्लू खींचे चकराती फिरतीं।

नाइन बुआ की दिली-ख्वाहिश थी कि वे मेरे लिए लड़की ढूँढें। मैं उनसे इन्तज़ार करने को कहता, तो वे उदास हो जातीं। मेरी वह उम्र ऐसी नहीं थी कि उनकी उदासी को सन्ज़ीदगी से ले पाता!

हद यह, कि मैंने शायद खुद अपनी शादी पर भी उनके न होने को पूरी शिद्दत से महसूस नहीं किया। वे और उनके ज़माने की यादें तेज़ी से धुँधला रही थीं!

नाइन बुआ भी, साफ-सुथरे नीले आसमान, हरे घने सायादार दरख्त, खपरैल के कच्चे मकान, बैलगाड़ी, साइकिल, ताँगे, आलस, फुर्सत, खुश होने की मुहल्लत, मेहमानदारी, त्यौहार और एक-दूसरे की खुशी में शामिल होने की बेताबी की तरह ही तेज़ी से धुँधली पड़ रही थीं। शहर में होने वाली शादियों से और दुनिया से रुख्सत हुए तो उन्हें एक ज़माना बीत ही चुका था।

मुझे याद है कि आपा की शादी में उन्होंने कितना बड़ा काम किया था।

आपा की शादी हमारे तायाज़ाद भाई से हुई थी। इतना ही नहीं ताई भी अम्मा की सगी बहन थी! साइंस और कुछ लोग, ऐसे रिश्ते के बारे में, जो भी कहें, सच यह है, कि मुसलमानों में इतने करीबी रिश्ते में भी शादियाँ होती हैं। और ऐसा होना पसन्द किया जाता है। यह अलग बात है कि मैं खुद इसका समर्थन नहीं करता।

खुद इसका समर्थन नहीं करता।

यह तब की बात है, जब भोपाल रियासत तो खत्म हो चुकी थी, मगर न मध्यप्रदेश बना था, न भोपाल उसकी राजधानी। रियासती (राजनैतिक) माहौल और मिजाज़ अभी उसी तरह बरकरार था। न शहर की सारी दीवारें टूटी थीं, न दरवाज़े। वही सँकरी गलियाँ, कच्ची-पक्की सड़कें, वही गिनती के ताँगे, वही पुराने शनासा (परिचित) चेहरे।

भोपाल का मध्य वर्ग गरीब ही था। और यहाँ झूठी शानो-शौकत और दिखावा भी नहीं था। यहाँ हकूमत करने वाले पठान थे। पठान सादा मिजाज़ होते हैं। इससे भी बढ़कर यह कि यहाँ की हाकिम (शासक) बेगमें रही थीं। शायद इस वजह से भी कई बुराइयाँ यहाँ नहीं पनप पाई थीं। कुल मिलाकर, यहाँ के लोगों में एक तरह की सादगी थी जिसका असर यहाँ की शादियों में भी नज़र आता था।

आपा, हम तीन भाइयों में अकेली बहन थीं – हम सब की लाड़ली। अब उनकी शादी हो रही थी, तो हम सब ही खुश थे। हफ्तों पहले से, मेहमान आना शुरू हो गए थे। उबटन पीसा गया था। लड्डू बने थे। गाने-बजाने का माहौल था। आपा की "कोना बिठाई" रस्म हुई थी। इसमें उनकी हम उम्र लड़कियाँ उनके साथ थीं। मेंहदी की रस्म हुई थी, जो मेरी हथेली पर भी लगाई गई थी। आपा का दहेज़, बारात से एक दिन पहले, सड़क के पार उनके ससुराल पहुँचा दिया गया था! यह वही घर था, जिसमें खेलते, खुद मेरा आधा बचपन बीता था।

इस अदला-बदली ने मेरे मन में अन्देशे बोना शुरू कर दिए थे। बारात के स्वागत के लिए घर में तो जगह थी नहीं। बाहर सड़क पर टेन्ट लगाकर दूल्हे के लिए तखत, और बाकी लोगों के लिए फर्श पर बिछात की गई थी। और तकिए लगाए गए थे। शाम के तीसरे पहर, सड़क पार करके बारात आ पहुँची थी, क्योंकि अब्बा चाहते थे कि अँधेरा होने से पहले मगरिब की नमाज़ के बाद, रुख्सत हो जानी थी। टेन्ट में काज़ी साहब ने निकाह पढ़ाया, फिर दूल्हा सलाम के लिए औरतों में गया। और उसके बाद आपा, हमें छोड़कर, उसके साथ रवाना हो गईं।

किसी से जीते-जी बिछड़ने का यह मेरा पहला अनुभव था। इसे मैं पूरी तरह से समझ तो नहीं पाया था। लेकिन उदासी ने मेरे अन्दर ऐसी गहरी जड़ें उतारी थीं कि आँसू बह निकले। मैं भागकर कमरे में छिप गया। मगर नाइन बुआ ने मुझे देख लिया! वे अपना काम छोड़कर मुझे ढूँढती हुई कमरे में आईं। और अपना इकलौता हाथ, मेरे सिर पर रखकर, दिलासा देने लगीं।

फिर और लोग भी कमरे में आ गए थे।

आने वाले दिनों में मेरे पास इस असलियत से समझौता करने के सिवा चारा नहीं था, कि आपा अब सड़क पार, ताया अब्बा के घर में रहेंगी – और वही उनका घर है। वे हमारे यहाँ आएँगी, मगर लौटकर अपने ही घर जाएँगी, और वहीं रहेंगी।

जुदाई का वह पहला एहसास और सिर पर नाइन बुआ का स्पर्श, आज भी मेरे भीतर, उसी ताज़गी के साथ पैवस्त (शामिल/जुड़ा हुआ) है।

बहुत सारी शादियाँ, अभी तक की उम्र में मैंने देखीं, उनमें शिरकत (शामिल) की। और लगातार, अपने आसपास के बदलाव को, महसूस करता रहा। खुद अपनी बारी भी आई थी और शादी के बाद घर बस गया था। उस वक्त भी मुझे नाइन बुआ याद नहीं आई थीं।

वह तब याद आई थीं, और उनका वह हाथ, मैंने सिर पर दोबारा तब महसूस किया था, जब मैं अपनी बेटी को रुख्सत कर रहा था! एक पूरी तरह बदली हुई दुनिया में, जब मेरी आँखें आँसुओं से लबरेज (भरी) थीं मुझे लगा था, नाइन बुआ मेरे सिर पर अपना वही इकलौता हाथ रखकर दिलासा दे रही हैं। वही नाइन बुआ, जिनका हवाला उस फेहरिस्त में कहीं दर्ज नहीं था, जो पिछले पचास साल में हुई शादियों के रिकार्ड की शक्ल में मेरे सामने मौजूद थी।

...और सिर पर नाइन बुआ के हाथ का स्पर्श, आज भी मेरे भीतर, उसी ताज़गी के साथ पैवस्त है।

सभी चित्र: दिलीप चिंचालकर